सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

आँख के आँचल बँधा इक श्वेत मोती है,
फूल पँखुरी एक दिन काँटा पिरोती है,
ओसबूंदें पंखड़ी पर बिखरती हैं इसलिए
हर कली खिल मुस्कराती और रोती है।

—लखन सिंह भदौरिया 'सौमित्र'

अंक-8 अक्तूबर-दिसम्बर 1995

सम्पादक—डॉ० सुधेश

सहज कविता

त्रैमासिक

अक्तूबर-नवम्बर-दिसम्बर 1995

वर्ष 2 अंक 8

क्रम

विचार-विमर्श		2-32
सहज कविता पर पुनर्विचार		3
ग़ज़ल	गोपाल गर्ग	14
	वेद प्रकाश अमिताभ	14
	रामपाल सिंह 'अरुष'	15
	मधुर नज़मी	15
	राजकुमार सैनी	16
	राजेन जैपुरिया	16
हिन्दी ग़ज़ल : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—डॉ० रामस्नेही 'यायावर'		16
गीत	डोमन साहु 'समीर'	18
	महेन्द्र भटनागर	18
	रेखा व्यास	19
	सुमन सिंह	19
ग़ज़ल	सुधेश	20
कविताएँ	दिनेश चन्द्र द्विवेदी	21
	जितेन्द्र श्रीवास्तव	22
	कमलेश सिंह	22
	कुसुमांजलि शर्मा	23
	रामगोपाल परिहार	23
	मिथिलेश दीक्षित	24
	रामेश्वरलाल खण्डेलवाल तरुण	25
कुछ हाइकु मुकेश रावल		25
आधुनिक मलयालम कविता—एस० गुप्तन नायर		26
मूल्यांकन	सुधेश	29
	बी० मीनाक्षी	30
श्रद्धांजलि		31

प्रकाशक श्रीमती सुशीला शर्मा द्वारा 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित। तरुण प्रिंटर्स, 9267 पश्चिमी रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

अवैतनिक सम्पादक—डॉ० सुधेश

मूल्य : छः रुपये, वार्षिक चौबीस रुपये। संस्थाओं के लिए तीस रुपये।

विचार-विमर्श

सहज कविता आत्मस्फूर्त होती है जो सहज भाव से अपने वैचारिक व संवेदनात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती चलती है। सहज कविता में आपने विचारों का महत्व भी माना है, यह शुभ है।···आज का युग बौद्धिक जटिलता का युग है। कवि भी इस जटिलता के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता। किन्तु जब कवि विचारों को आत्मसात करके···कविता में व्यक्त करता है तो वे आत्म-स्फूर्त होकर सहज हो जाते हैं। यीट्स का भी मानना है कि यदि···रचना में दो क्षण के लिए भी विचारोत्तेजक स्थिति पैदा न हो तो सारा लिखना व्यर्थ है। कविता आत्मस्फूर्त बनी रहे और सहज भी, यह कविता की अपनी आवश्यकता है।

—श्रीगोपाल जैन (लक्ष्मणगढ़, राजस्थान)

आन्दोलन के नाम से निकलने वाली पत्रिकाएँ बहुत आगे तक नहीं चलीं। कई उदाहरण हैं। आप यदि इसे सुधारवादी सोच का नाम देते हैं तो शायद यह अधिक उपयुक्त है।

—सत्यदेव संवितेन्द्र (सोजत शहर, राजस्थान)

विगत तीन दशकों से छान्दसिक गरिमा नकारना···समीक्षकों ने अपना दायित्व माना है।···ऐसी स्थिति में कविता का सही मूल्यांकन सम्भव नहीं। आपके इस रचनात्मक सत्प्रयास से नई पीढ़ी को नई दिशा मिलेगी।

—राममूर्ति शुक्ल 'अनुरागी' (सीतापुर, उ०प्र०)

विभिन्न विशेषणों की भीड़ में कविता के दर्शन करने को हृदय तरस जाता है।···आपने कविता के नये विशेषण के रूप में 'सहज' का प्रयोग नहीं किया, अपितु कविता के सहज रूप को ही स्वीकार्य किया है।···यदि लय को नियमानु-शासित रखा जाएगा तो वह छन्द का स्वरूप ग्रहण कर लेगी और स्वतन्त्र लय-युक्त होने से कविता छन्द से मुक्त हो जाएगी। तात्पर्य यह है कि कविता में लय की उपस्थिति अनिवार्य है।···कला की बात जहाँ तक है वह तो कविता के कौशल का विस्तार है, स्वयं में कविता नहीं।

—रामपाल सिंह 'अरुष' (मुज़फ्फर नगर, उ०प्र०)

अब यह प्रश्न तो कोई मानी नहीं रखता कि ग़ज़ल तो सिर्फ उर्दू ज़बान में ही फबती है या उसे हिन्दी ग़ज़ल कहना उसकी प्रकृति व स्वरूप के साथ मज़ाक

(शेष पृष्ठ 32 पर)

सहज कविता पर पुनर्विचार

'सहज कविता' शब्दावली कई सालों से मेरे मन में घुमड़ रही थी। जब वह 'सहज कविता' त्रैमासिक के प्रथम अंक (जनवरी-मार्च 1994) में प्रकाशित होकर पाठकों के सामने आई तो अलीगढ़ से एक मित्र डॉ० वेद प्रकाश अमिताभ ने पत्र लिखकर सूचना दी कि वर्षों पहले डॉ० रवीन्द्र भ्रमर इसी नाम का एक काव्य-संकलन अलीगढ़ से प्रकाशित कर चुके हैं और वे भी मेरी तरह 'सहज कविता' का आग्रह कर चुके हैं। पहले आश्चर्य हुआ कि मुझे इसकी सूचना पहले क्यों नहीं मिली और फिर यह सोचकर आश्वस्त हुआ कि मैं जो सोच रहा था या प्रयत्न कर रहा था, वह अकारण और व्यर्थ नहीं था और अकेले कण्ठ की पुकार नहीं था।

'सहज कविता' के विभिन्न अंकों पर कवियों, कविताप्रेमी पाठकों और आलोचकों की बहुत-सी अनुकूल प्रतिक्रियाएँ आईं। अनुकूल अधिक थी, पर प्रतिकूल में से कुछ रोचक थीं। अनेक प्रतिक्रियाएँ विभिन्न अंकों में छप चुकी हैं, पर कुछ की चर्चा यहां पहली बार कर रहा हूँ। श्री गोपाल जैन ने लक्ष्मणगढ़ (राजस्थान) से लिखा कि कविता कविता होनी चाहिए। वह 'सहज' अथवा अन्य किसी विशेषता की मोहताज क्यों हो? मैंने भी सोचा कि कविता से पहले 'सहज' विशेषण लगाना क्या अनिवार्य है? क्या कविता की अपेक्षाओं को लेकर बात नहीं की जा सकती? पर ऐसी बातचीत तो सामान्यतः बहुत हो चुकी है और गोलमोल बातों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। छद्म कविता के छद्म का अनावरण किये बिना वास्तविक कविता को सामने नहीं लाया जा सकता। सच्ची कविता को सामने लाने के लिए सहज कविता की बात उठाई गई।

'सहज कविता' से एक युवा कवि अनिल गंगल (अलवर) को लगा कि मैं किसी आन्दोलन का झण्डा उठाकर मैदान में निकल पड़ा हूँ और उन्होंने भविष्यवाणी की कि यह आन्दोलन सफल नहीं होगा (यद्यपि 'सहज कविता' के प्रथम अंक में ही मैंने किसी नारे या आन्दोलन से इनकार किया था)। कविता से पहले अनेक विशेषण लगाकर कविता के अनेक आन्दोलन हो चुके हैं। कुछ स्टण्ट निकले

और कुछ इतिहास की वस्तु बन चुके हैं। कविता की उन्नति के लिए मैं किसी नये आन्दोलन की आवश्यकता नहीं समझता, पर इस शब्दावली में कुछ लोग आन्दोलन की गन्ध पाएँ तो आश्चर्य नहीं। आन्दोलनों की गहमागहमी से भरे युग में आज का आदमी आन्दोलन से परे नहीं सोच पाता क्योंकि वह जानता है कि आजकल छोटी से छोटी बात के लिए भी आन्दोलन करना पड़ता है और उसके बिना प्रभुवर्ग के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।

'सहज कविता' के लिए मैंने उसकी लयात्मकता को आवश्यक माना, और अनेक तर्कों से उसकी वकालत की। 'सहज कविता और लय' शीर्षक मेरा निबन्ध इस दृष्टि से अवलोकनीय है। पर बोकारो के एक कवि बालकवि आर्य को लगा कि मैं छन्द का महत्व घटा रहा हूँ और उन्होंने मेरे लेख 'सहज कविता की आवश्यकता' पर यों टिप्पणी की—"आपने लिखा है—'लय की विभिन्न योजना ही छन्द है। लय छन्द का मूलाधार है।' फिर आपने यह भी लिखा है कि 'कविता को सहज होने के लिए उसका छन्दमय होना आवश्यक नहीं है।'...पर कविता को सहज होने के लिए लययुक्त तो होना ही चाहिए।' यहाँ विरोधाभास प्रतीत होता है। सच तो यह है कि यदि लय छन्द का मूलाधार है तो कविता छन्दमय होगी ही।" इस तथाकथित विरोधाभास को न मानते हुए मैंने अपने मत के स्पष्टीकरण के लिए 'सहज कविता और छन्द' शीर्षक लेख (अंक-3 में) लिखा। मेरा तर्क था कि आजकल कविता के लिए छन्द की अनिवार्यता नहीं रही, और छायावादी दौर के उत्तरकाल से छन्द को तोड़ने का जो सिलसिला चला था उसे 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के समय तक छन्दहीनता तक पहुँचा दिया गया। मैंने इस छन्दहीनता या छन्दमुक्त कविता की आलोचना की, पर मेरे विचार में इसका जवाब छन्दोबद्ध कविता नहीं है, बल्कि लयात्मक कविता है, जिसे मैंने 'सहज कविता' कहा है। छन्दोबद्ध कविता भी सहज हो सकती है, यदि वह कवित्वहीन पद्य मात्र नहीं है। पद्य की प्रमुख विशेषता उसका छन्दोबद्ध होना है, पर प्रत्येक पद्य केवल छन्दमयता के कारण उत्कृष्ट कविता का उदाहरण नहीं हो सकता। प्रायः कविता और पद्य में इसी आधार पर भेद किया जाता है कि कविता के लिए पद्य की-सी छन्दोबद्धता और तुकान्तता आवश्यक नहीं है, जबकि पद्य का प्रधानगुण वही है। छन्द की व्यवस्था में भी श्रेष्ठ कविता लिखी जा सकती है और पुराने जमाने के अनेक कवियों ने श्रेष्ठ छन्दोबद्ध कविता लिखी है। इस समृद्ध काव्य-परम्परा को और छन्द की महत्ता को नकारने की आवश्यकता नहीं है, पर इस प्रसंग में दो बातों पर विचार करने की आवश्यकता है।

एक तो यह कि साहित्य और उसकी विधाएँ तथा शैलियाँ जीवन के समान परिवर्तनशील हैं। जीवन सदा एक-सा नहीं रहता तब साहित्य क्यों एक जगह ठहरा रहे। देशकाल गत परिवर्तन जैसे जीवन की स्थितियों को प्रभावित करते

हैं, वैसे परिस्थितियाँ साहित्य की विधाओं और शैलियों को भी प्रभावित करती हैं। महाकाव्य उस सामन्तीय व्यवस्था की उपज थे, जिसमें सुविधाप्राप्त अभिजातवर्ग का व्यक्ति ही उसका पाठक था। आधुनिक पूँजीवादी युग में मुक्तक कविता की लोकप्रियता बढ़ी। यही बात छन्द के बारे में भी कही जा सकती है।

दूसरी बात यह है कि छन्द भी कविता की कोई स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनशील व्यवस्था नहीं है। छन्दों के विभिन्न भेद छन्दगत परिवर्तनशीलता के सूचक हैं। विभिन्न प्रकार की लयव्यवस्था से विभिन्न छन्दों का विकास हुआ। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि विभिन्न लय-व्यवस्थाओं में आगे किसी परिवर्तन की गुंजाइश नहीं है। सम्भव है कि कुछ लोगों के लिए छन्दों के भेद अन्तिम रूप से निश्चित हो गये हों, पर वास्तविकता यह है कि उनमें आगे भी परिवर्तन की सम्भावनाएँ हैं। ये छन्दगत परिवर्तन मध्यकाल में भी होते रहे और आधुनिक काल में भी। उदाहरण के लिए भक्तिकाल के कृष्णभक्त कवि नन्ददास ने सूरदास के पदों से भिन्न एक काव्यशैली अपनाई थी, जिसमें पद के अन्त में वे इस प्रकार की आधी पंक्ति जोड़ देते थे 'सुनो ब्रज नागरी' अथवा 'सखा सुन श्याम के'। यह आधी या चौथाई पंक्ति सम्पूर्ण पद की छान्दसिक अथवा संगीतात्मक आवश्यकता को पूरा नहीं करती थी। पर यह अतिरिक्त शब्दावली पद में प्रयुक्त होकर कविता में नाटकीयता का तत्व जोड़ देती थी अथवा कहीं व्यंग्य को धारदार बनाती थी अथवा कवि के किसी आशय को व्यक्त करती थी। यों भी कहा जा सकता है कि नन्ददास को पदों की छन्दात्मक व्यवस्था अपर्याप्त लगी और इसलिए उन्होंने उससे बाहर जाने की कोशिश की।

इस प्रकार की कोशिश अनेक आधुनिक कवियों ने भी की। विभिन्न छन्दगत प्रयोगों के लिए निराला का नाम अक्सर लिया जाता है। उन्होंने कवित्त छन्द की लय को तोड़कर अनेक कविताएँ लिखीं। 'तुलसीदास' में उन्होंने परम्परागत छन्द को न अपनाकर नयी लयात्मक व्यवस्था को अपनाया जिसे मुक्त छन्द का प्रयोग कहा जा सकता है। 'राम की शक्ति पूजा' में भी कोई परम्परागत छन्द नहीं है। भावों के उत्थान-पतन के अनुसार लय की गति क्षिप्र और मन्थर होती चलती है। इसे 'शक्तिपूजा' छन्द कह लीजिए अथवा मुक्त छन्द का एक नवीन सफल प्रयोग। सुमित्रानन्दन पन्त ने प्रायः तुकान्त और छन्दोबद्ध कविता लिखी, पर उन्होंने भी छन्द के क्षेत्र में अनेक सफल प्रयोग किये। गीत में छन्द की व्यवस्था मुक्त छन्द की रचना की तुलना में कड़ी होती है, पर पन्त ने अपने अनेक गीतों में छान्दसिक व्यवस्थाओं को तोड़कर काव्यात्मक तथा संगीतात्मक सौन्दर्य पैदा कर दिया। उदाहरण के लिए गीत की टेक में जितनी मात्राएँ होती हैं, अन्तरा की पंक्तियों के बाद प्रायः टेक की मात्राओं के बराबर की पंक्ति रखी जाती है। पन्त ने कई गीतों में अन्तरा की पंक्तियों के बाद वाली पंक्तियों को आवश्यकता-

नुसार बड़ा या छोटा कर दिया है। फिर अन्तरा में कहीं दो पंक्तियाँ रखीं, कहीं चार। उनकी मात्राएँ कभी टेक की पंक्ति के बराबर रखी गईं, कभी अधिक। यह सब कवि के विवेक और विषय की प्रकृति पर निर्भर था। सांगीतिक आवश्यकता अथवा प्रयोग की दृष्टि से भी ऐसा हुआ होगा। पर वे प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं थे। विषय की व्यंजना में मार्मिकता लाने के लिए ये छन्द-गत प्रयोग किये गये थे और ऐसे प्रयोग कई छायावादी कवियों तथा छायावादोत्तर कवियों ने किये।

पन्त और नरेन्द्र शर्मा घनिष्ठ मित्र थे। नरेन्द्र शर्मा ने अपने कई गीतों में ('प्रवासी के गीत' में संकलित) इसी प्रकार के शैलीगत परिवर्तन किये। इसी प्रकार हरिवंश राय बच्चन ने अनेक गीतों में लयात्मक या संगीतात्मक आवश्यकताओं के कारण छन्दगत परिवर्तन किये। इससे यही स्पष्ट हुआ कि छन्द की दृष्टि से कसी हुई काव्यात्मक विधा गीत में भी कवि छन्द की शास्त्रीय रूढ़ियों को तोड़ने की आवश्यकता अनुभव करता है। तात्पर्य यही कि छन्द कविता की कोई स्थिर या अपरिवर्तनशील व्यवस्था नहीं है। कवि भावव्यंजना के लिए कभी छन्द के नियमों का उल्लंघन करने या छन्द प्रयोग में स्वतंत्रता लेने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में छन्द-निर्वाह की तुलना में भावव्यंजना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

यह छन्दगत स्वतन्त्रता कवि दो प्रकार से लेते देखे जाते हैं। एक तो वहां जहां छन्द के अधिकांश नियमों का पालन करते हुए कहीं-कहीं उसमें परिवर्तन कर दिया जाता है। इसे छन्द का स्वतन्त्रतापूर्वक किया गया निर्वाह कह सकते हैं, जैसा कि पन्त, नरेन्द्र शर्मा और बच्चन आदि के गीतों में देखा जा सकता है। छन्दगत स्वतन्त्रता का दूसरा प्रकार वहां दिखाई देता है जहाँ कवि विहित छन्दों की शैली अथवा छन्दों की लयात्मक व्यवस्था को छोड़कर पूर्ण स्वतन्त्र होकर अपनी आवश्यकतानुसार नयी लयव्यवस्था निर्धारित करता है और ऐसी लयव्यवस्था किसी शास्त्रीय छन्द की लयव्यवस्था नहीं होती। निराला कृत 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' की स्वतन्त्र लयव्यवस्था ऐसी ही है। इसमें अबाध लयात्मक प्रवाह महत्वपूर्ण होता है, छन्द की रूढ़ि पीछे छूट जाती है।

'सहज कविता और छन्द' शीर्षक लेख में जो बातें मैं विस्तार से नहीं लिख पाया था, उन्हें यहां लिखना पड़ा। उक्त लेख पढ़कर हिन्दी कवि और आलोचक डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा ने रोहतक से मुझे लिखा—"आप जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे हैं, उसमें छन्द की महत्ता को स्वीकारते हुए भी और लय को छन्द का प्राण बताते हुए भी आप केवल लय की महिमा को रेखांकित करके कहीं कोई सुविधा-जनक रास्ता निकालते प्रतीत हो रहे हैं।..."

छन्दोबद्ध कविता कोरे गद्य और पद्य से भिन्न धरातल की सर्जन-क्षमता की

अभिव्यक्ति है। छन्द से रहित या मुक्त तो गद्य ही है। छन्द ही गद्य और कविता का वास्तविक भेदक तत्व है। गद्य गद्य है और कविता कविता। गद्यात्मक कविता की बात वे ही करते हैं जिनमें कविता लिखने की सच्ची क्षमता नहीं है और अपने गद्य की पंक्तियों को तोड़-तोड़कर रखने को ही कविकर्म समझते हैं। छन्द की साधना के बिना अभिव्यक्ति में लय या संगीत की सृष्टि सम्भव नहीं है। अब रही मुक्तछन्द की बात। मुक्त छन्द कविता भी छन्द से मुक्त नहीं हो सकती। निराला ने बहुत दिनों तक छन्द की साधना करने के उपरान्त मुक्त छन्द कविता लिखनी सीखी थी। यही कारण है कि उनकी मुक्तछन्द कविताओं में छन्दोबद्ध कविताओं से भी अधिक प्रवाह है। जितने ऊंचे दर्जे की रचना होगी, वह उतने ही ऊंचे स्तर के कलात्मक संयम और अनुशासन की अपेक्षा रखेगी। निराला का मुक्तछन्द छन्द से प्रसूत है। बिना छन्द के तो कविता हो ही नहीं सकती। अनुभूति की तीव्रता अपने नैसर्गिक आरोह-अवरोह के अनुसार विभिन्न छन्दों की छोटी-बड़ी पंक्तियों में ढलती चलती है। अधिकतर अवसरों पर तो एक ही लयात्मक घटक की विभिन्न रूपों में आवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए यदि किसी पंक्ति में छह मात्राएं हैं तो दूसरी में बारह, तीसरी में चौबीस और चौथी में अठारह। किसी पंक्ति में नौ और किसी में पन्द्रह भी हो सकती हैं। उच्चारण की अपेक्षाओं के अनुरूप बारह के स्थान पर तेरह, चौबीस के स्थान पर तेईस मात्राएँ भी हो सकती हैं, किन्तु प्रवाह निर्बाध रहता है। किन्तु लय के इस अखण्ड प्रवाह की रक्षा तो कोई निराला ही कर सकता है। टी० एस० इलियट ने कहा है कि उत्तम रचना करने के इच्छुक कवि के लिए कोई कविता 'मुक्त' नहीं है। सर्वाधिक मुक्त कविता की पृष्ठभूमि में भी किसी न किसी छन्द की आत्मा निहित रहती है। इलियट के मूल शब्द हैं—"the ghost of some simple meter should lurk behind the areas in even the freest verse." इलियट ने अपनी पुस्तक 'On poetry and poets' के पष्ठ 37 पर लिखा है कि कोई अधम कवि ही छन्द या शिल्प से मुक्ति के रूप में मुक्त छन्द का स्वागत कर सकता है। इलियट के अनुसार मुक्त छन्द कविता के नाम पर ढेरों भद्दा गद्य अथवा भोंडा पद्य ही लिखा गया है। इलियट की स्पष्ट मान्यता है कि "And the so-called verse-libre which is good is any thing but free."

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छन्द को लय से और लय को छन्द से अलग देखना न्यायसंगत नहीं है। बिना छन्द के लय तो निराला जी भी नहीं निष्पन्न कर सके, फिर छन्द साधना से शून्य नवयुवकों को मुक्त छन्द कविता के नाम पर सहज कविता लिखने के लिए आमन्त्रित या प्रेरित करना कदापि श्रेयस्कर नहीं हो सकता। लय के नाम पर सुविधा या छन्द से छूट के लिए रास्ता निकालना और उसे सैद्धान्तिक समर्थन देना ठीक नहीं है।" (डॉ० वर्मा के पत्र से उद्धृत)

डॉ० वर्मा की ऊपर कही गई अनेक बातों से मैं सहमत हूँ, पर विभिन्न पंक्तियों में मात्राओं की विभिन्न संख्या जिस रचना में होगी, वह मेरे विचार से छन्दोबद्ध रचना नहीं मानी जा सकती। भले ही उसे मुक्त छन्द की रचना कहा जाए। जैसे छन्दोबद्ध और छन्दमुक्त (अर्थात छन्दहीन) रचना में भेद करने की जरूरत है, वैसे ही छन्दोबद्ध और मुक्तछन्द रचना में भेद किया जाना चाहिए। डॉ० वर्मा इस भेद से परिचित हैं, पर जब वे कहते है कि "बिना छन्द के तो कविता हो ही नहीं सकती", तो शायद वे मुक्त छन्द-रचना का ध्यान नहीं रखते, जो अपने लयात्मक प्रवाह के बावजूद छन्दोबद्ध रचना नहीं है। यह निश्चित है कि मुक्त छन्द रचना में छन्द कविता का-सा अनुशासन नहीं होता अर्थात मुक्तछन्द रचना में छन्द से मुक्ति किसी न किसी मात्रा में होती है। बहुत-सी रचनाएं ऐसी भी लिखी गई हैं जिनमें छन्द की मुक्तता तथा विविधता के साथ वैसा उपयोग नहीं है, जैसा मुक्तछन्द रचना में होता है। ये मुक्त छन्द की रचनाएं न होकर भी लयात्मक प्रवाह रखती हैं, अर्थात इनमें छन्द की रूढ़ि पीछे छूट जाती है, फिर भी ये विश्वास दिलाती हैं कि उनमें कवित्व है और वे गद्यात्मक पंक्तियों से भिन्न हैं। उनमें छन्द के अनुशासन और मुक्त छन्द वाली मुक्ति के बजाए लयात्मकता को पहचाना जा सकता है। इसी विश्वास के आधार पर मैंने छन्द की अवमानना न करते हुए छन्द के बजाए लय को महत्त्व दिया है। यह कोई सुविधाजनक बीच का रास्ता निकालने की कोशिश नहीं है। लय छन्द का प्राण है, पर प्रत्येक लय छन्द में परिणत नहीं होती। अनुशासित लय ही छन्द बनती है। छन्द के साथ जो अनुशासन अनिवार्य है, वह लय के साथ नहीं है। इस प्रकार छन्द और लय में तात्विक अन्तर तो करना ही पड़ेगा। पर इस बहस से विषय स्पष्टतर होगा।

सहज कविता की चर्चा मैंने उन गद्यवत् रचनाओं को कविता कहने के विरोध में भी की, जो पिछले कई दशकों से, विशेषत: 'प्रयोगवाद' तथा 'नयी कविता' के दौर से लिखी जा रही हैं, जिनके व्यापक प्रचलन से लगता है कि कविता लिखना सब से आसान मान लिया गया है। मेरा लेख 'सहज कविता की आवश्यकता' पढ़कर भुवनेश्वर से उड़िया तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डॉ० तारिणी चरणदास 'चिदानन्द' ने अपने पत्र में लिखा—"शिल्पपूर्ण कविताएं सचमुच बौद्धिक व्यक्तियों के लिए होती हैं। कविता पूरे गद्य में भी लिखी जा सकती है परन्तु काव्यात्मक होने से वंचित नहीं हो सकती।" चिदानन्द जी 'पूरे गद्य' में भी काव्यात्मकता की संभावना देखते हैं, जबकि दिल्ली के कवि डॉ० रामप्रसाद मिश्र का विचार है कि "कविता कविता है,—चाहे छन्दबद्ध हो या मुक्त, बस एक गद्येतर प्रभावी अनुभूति या संवेदन या भाव या विचार होना चाहिए" अर्थात उनके अनुसार कविता एक गद्येतर रचना है।

चिदानन्द जी के उक्त मत पर टिप्पणी करते हुए मैंने अपने लेख 'सहज कविता

और लय' (अंक 4) में पूछा कि पूरे गद्य में जो तथाकथित कविता होगी क्या उसमें अर्थ की लय होगी ?" अर्थ की लय के विचार का जोरदार खण्डन मैंने उक्त लेख में किया है। उसे पढ़कर मध्यप्रदेश के कवि चन्द्रसेन विराट ने लिखा—"अर्थ की लय वाली बात वाणी विलास ही साबित हुई है। इस पर पर्याप्त बहस हो चुकी है। अब और नहीं।" पर डॉ० चिदानन्द ने बहस को आगे बढ़ाते हुए टिप्पणी की—" 'सहज कविता' का चौथा अंक मिला।···उसमें गद्य कविता संबंधी अथवा कविता में गद्य का स्थान सम्बन्धी मेरे विचार का उल्लेख किया गया है।··· परन्तु मेरा विचार 'अर्थ की लय' की ओर नहीं गया। यह शब्द Tone या auditory imagination (T. S. Eliot) का अनुकरण है।···मेरा उद्देश्य है गद्य को तोड़कर छोटी-बड़ी पंक्तियों में बाँटकर कविता का जो प्रयत्न किया जाता है, उस से अच्छा है कि कोरे गद्य में लिखें। काव्यात्मकता का अर्थ छोटी कविताओं में शब्दगत तारतम्य के साथ भाव, भावना, प्रभाव अथवा विचारगत प्रवाह है। गीतांजलि (गद्यानुवाद) तथा 'साधन' (रामकृष्ण दास) इसके उदाहरण हैं। इस मुक्त आसंग के युग में अर्थ की लय मुक्तता और विविधता में एकता के अलावा और क्या हो सकती है ?" इस टिप्पणी से स्पष्ट है कि चिदानन्द जी अर्थ की लय में विश्वास ही नहीं रखते, बल्कि उसकी व्याख्या का प्रयत्न भी करते हैं। वे इस शब्दावली को इलियट द्वारा प्रतिपादित Tone या auditory imagination से जोड़ते हैं। पर उक्त कथन में उन्होंने जिस 'शब्दगत तारतम्य' की बात कही है क्या वह शब्दगत लय नहीं है क्योंकि लय से ही शब्दगत तारतम्य पैदा होता है ? पर जब वे 'विचारगत प्रवाह' और 'मुक्त आसंग' की बात करते हैं तो यही लगता है कि वे लय को 'विचारगत प्रवाह' मानते हैं।

इन टिप्पणियों से सहजकविता-सम्बन्धी बहस कविता के गद्य से सम्बन्ध या अलगाव पर आ टिकती है और दूसरी ओर गद्यात्मक रचनाओं को अर्थ की लय के तर्क पर कविता मानने या न मानने के प्रश्न पर केन्द्रित हो जाती है। मैंने अर्थ की लय के तर्क को अस्वीकारते हुए लय को शब्दात्मक माना है और कविता की प्रकृति को लयात्मक बताते हुए गद्य को शब्दों के लयात्मक प्रवाह से रहित रचना की संज्ञा दी है। इस प्रकार मेरे विचार से लयहीन रचना सहजकविता नहीं हो सकती, पर कविता होने के लिए उसका लयात्मक होना एकमात्र शर्त या आवश्यकता नहीं है। लय के साथ कविता के अन्य तत्वों का भी उसमें समावेश होना चाहिए।

डॉ० जगदीश गुप्त अर्थ की लय के समर्थक हैं। उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'नयीकविता' में इस पर काफी लिखा गया है। हाल ही में अहमदाबाद की त्रैमासिक पत्रिका 'भाषा सेतु' के जनवरी-मार्च 1995 के अंक में उन्होंने कविता की परिभाषा यों प्रस्तुत की—"कविता सहज आन्तरिक अनुशासन से युक्त वह

अनुभूतिजन्य सघन लयात्मक शब्दार्थ है, जिसमें सहअनुभूति उत्पन्न करने की यथेष्ट क्षमता निहित रहती है।" (पृष्ठ 39) कविता को 'लयात्मक शब्दार्थ' कहने से लगता है कि वे कविता में लयात्मकता के समर्थक हैं, किन्तु आगे वे अपनी पुरानी मान्यता को दुहराते हुए लिख गये कि "मैंने रचनात्मकता और भाषा के प्रवहमान स्वभाव को केन्द्र में रखकर···'शब्दलय' के साथ 'अर्थ-लय' की स्पष्ट धारणा व्यक्त की है।" 'अर्थलय' या अर्थ की लय को उन्होंने स्पष्ट नहीं किया, पर जब वे लिखते हैं कि "गद्य को कविता के विरुद्ध रखकर देखना सही नहीं है, क्योंकि बहुत दूर तक उसमें काव्यगुण समन्वित रहे हैं···काव्य में गद्य-पद्य दोनों का समावेश माना ही गया है" तो लगता है कि 'अर्थलय' के तर्क की आड़ में वे तथाकथित गद्य कविता को कविता मानने का औचित्य प्रदान करते हैं। क्या वे यह कहना चाहते हैं कि लयात्मक कविता में 'शब्द लय' होती है और गद्य में 'अर्थलय' होती है, और इस प्रकार 'लयात्मक शब्दार्थ' कविता और गद्य दोनों में विद्यमान है? यदि काव्य में गद्य और पद्य दोनों शामिल हैं तो संस्कृत काव्यशास्त्र में गद्य को अलग विधा क्यों माना गया? फिर पुराने ज़माने में काव्य को साहित्य के जिस व्यापक अर्थ में व्यवहृत किया गया था, उस व्यापक अर्थ में कविता शब्द का उपयोग करते हुए गद्य को कविता में शामिल करने की वकालत करना आजकल उचित नहीं है। क्या अर्थ की लय की भ्रान्त धारणा के आधार पर कविता और गद्य के अन्तर को मिटाना श्रेयस्कर होगा? पर 'नयी कविता' के पुरस्कर्ताओं ने यही किया कि इस कल्पित 'अर्थ लय' के आगे 'शब्द लय' को भी भूलकर कविता को गद्य के धरातल तक ले आये। इसीलिए मैंने लिखा था कि अर्थ की लय का तर्क हिन्दी कविता को गद्यात्मकता की तरफ ले गया और अब कुछ कवि-आलोचक कविता और गद्य का भेद मिटाने को तत्पर हैं। इस प्रकार के आलोचकों ने युवा कवियों को दिग्भ्रमित किया, छद्म् कवियों को श्रेष्ठ कवि बताया और अच्छी कविता तथा खराब कविता के भेद को मिटा दिया।

इस विवेचन से कविता को गद्य से अलगाने में मदद मिलेगी, और कविता को उसकी प्रकृत भूमि पर प्रतिष्ठित किया जा सकेगा। हिन्दी कविता में बढ़ती गद्यात्मकता से अनेक कवि मेरी तरह चिन्तित हैं। दिल्ली के प्रसिद्ध कवि चिरंजीत ने लिखा—"पिछले चार-पाँच दशकों से मध्यवर्गीय मठाधीशों ने अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए 'नयी कविता' नामक जिस गद्य-कविता को प्रचारित, प्रशंसित, पुरस्कृत और महिमामंडित किया है, वह कृत्रिम कविता है। उससे हिन्दी के काव्य-साहित्य का बहुत अहित हुआ है। कृत्रिम कविता के कारण ही जन-साधारण के मन में हिन्दी साहित्य के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई है।" इसी प्रकार की प्रतिक्रिया एक अन्य कवि मधुर शास्त्री ने व्यक्त की—"नयी कविता का अत्यधिक गद्यमय होना उसके कवित्व को गहरी क्षति पहुँचा रहा है।"

तो आजकल बहुप्रचलित इस तथाकथित गद्य कविता को 'सहज कविता' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। सहज कविता उसी कविता को कहा जा सकता है जिसमें यदि छन्द्र का निर्वाह न हो तो लय तो हो, अलंकारों, बिम्बों, प्रतीकों, कपोल कल्पनाओं से उत्पन्न वैचित्र्य न हो बल्कि सच्ची अनुभूति की सहज व्यंजना हो।

'सहज कविता की आवश्यकता' (अंक-1 में) शीर्षक अपने लेख में मैंने सहज कविता के कथ्य की ओर संकेत करते हुए शिकायत की थी कि आज की कविता में सामान्यजन पिटता गया है और जिस प्रकार साहित्य के महारथियों ने कविता को साहित्य के हाशिये पर ला दिया है, उसी प्रकार सामान्य जन भी समाज के हाशिये पर जीने के लिए विवश कर दिया गया है। मेरा आशय था कि अभिजात वर्ग के बजाए सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली कविता ही सहज कविता कहलाएगी। इस लेख को पढ़कर कानपुर के कवि रामस्वरूप सिन्दूर ने लिखा—"मैं आपके इस विचार से सहमत हूँ कि पिछले कुछ दशकों में कृत्रिम कविता अधिक लिखी गई, लेकिन आपने कविता को वर्गों में बाँधने का जो उपक्रम किया है, वह मुझे 'असहज' ही लगा। कविता में कथ्य और शिल्प की सहजता तो होनी चाहिए, लेकिन अनिवार्य नहीं कि वह सामान्य जन के लिए ही हो और कम्यूनिस्टों द्वारा रूढ़ हुए शब्द 'जनोन्मुखी' हो।" सिन्दूर जी कथ्य की सहजता से तो सहमत हैं, पर जनोन्मुखता में उन्हें कम्युनिज़्म की गन्ध मिली। अगर कोई कम्युनिस्ट कहे कि सूरज पूरब से निकलता है तो क्या इस सत्य को इसलिए नकार दिया जाए कि उसे कम्युनिस्ट ने कहा? अगर जनोन्मुखता की बात करना, जनता का नाम लेना, साहित्य को सामान्यजन से जोड़ना मात्र कम्युनिज़्म है तो इससे कम्युनिज़्म के प्रति अल्पज्ञता प्रकट होती है। वस्तुतः लेखक को ही सोचना है कि उसका साहित्य कुछ पढ़े-लिखे लोगों तक अथवा अभिजातवर्ग तक सीमित रहे अथवा विशाल जनता तक पहुँचे। मेरा विचार है कि आज ऐसा साहित्य सार्थक नहीं हो सकता जो केवल बुद्धिजीवी वर्ग अथवा अभिजात वर्ग तक सीमित रहे। इसीलिए मैंने हिन्दी कविता को आम जनता तक सम्प्रेष्य बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। ऐसी कविता सहज कविता ही हो सकती है।

कविता को वर्गों में बाँटने का जो आरोप रामस्वरूप सिन्दूर ने मुझ पर लगाया है, उसके बारे में इतना कहना पर्याप्त होगा कि जब समाज में विभिन्न वर्गों का अस्तित्व है, तो इस वास्तविकता को स्वीकारने में क्या बुराई है? वह समय बहुत दूर दिखाई देता है जब वर्गहीन समाज की स्थापना होगी। कुछ लोगों के लिए वह शाश्वत मृगतृष्णा है। रामराज्य का आदर्श भी एक कपोल कल्पना है पर बहुत-से लोग उसके लिए जान देने को तैयार हैं। तो जब तक रामराज्य का आदर्श अथवा वर्गहीन समाज का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता, तब तक विभिन्न वर्गों

की वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। फिर वर्गों की परिकल्पना तो वर्णव्यवस्था के बाद सामने आई। वर्ण-व्यवस्था अनेक क्षेत्रों में अप्रासंगिक होने पर भी अब तक समाप्त नहीं हुई है। हमारा देश वर्णव्यवस्था और वर्गविभेद दोनों की मार झेल रहा है। आज का कवि इस वास्तविकता से बचकर कैसे निकल सकता है? किसी भी युग का कवि युगीन यथार्थ की अवहेलना कैसे कर सकता है?

सहज कविता के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उरई (उ० प्र०) से डॉ० रामशंकर द्विवेदी ने लिखा—"नारों का, विचारधारा का आरोप करके जो कविता लिखी जाएगी वह कृत्रिम ही होगी। सन 1950 के बाद आंदोलन के लिए लिखी गई कविता सहज नहीं है और चाहे जो हो। आज सबसे बड़ा आलोचना कर्म कविता को कवित्वहीनता से अलगाना है।"

डॉ० द्विवेदी की टिप्पणी में सहज कविता को विचारधारा निरपेक्ष कविता मानने का आग्रह है, जो मुझे समीचीन नहीं लगता। साहित्य मात्र को विचारधारा से काटकर देखना एक तरह का पलायनवाद है। साहित्य में कोई न कोई विचार-धारा समन्वित होगी ही, चाहे उसकी व्यंजना स्पष्ट रीति से की गई हो अथवा उसे प्रतीकात्मक शब्दों अथवा सुन्दरतम आदर्शों के आवरण में लपेटकर की गई है और उस विचारधारा से पाठक सहमत हों या असहमत। संवेदनशील और विचारवान कवि यदि किसी विचारधारा तक पहुँचे तो उसका कविकर्म बाधित नहीं होता, बल्कि उसे और प्रखरता मिलती है। साहित्य की विचारधारा से कोई दुश्मनी नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्य में विचारधारा की अभिव्यक्ति सपाट प्रचारात्मक स्तर पर है अथवा कलात्मक कौशल के साथ। सहज कविता में कविता-पन को बचाने का जो आग्रह है वह जहाँ शिल्प के स्तर पर है वहाँ कथ्य के स्तर पर भी। विचारधारा का सम्बन्ध कविता के कथ्य से है। विचारहीन कविता शिल्प की दृष्टि से कितनी भी कलात्मक हो पर वह उत्कृष्ट सहज कविता नहीं कहला सकती, क्योंकि अन्ततः कविता की महत्ता उसके सन्देश अथवा कथ्य में निहित होती है। युगानुकूल सन्देश अथवा महत्वपूर्ण कथ्य की उपलब्धि विभिन्न विचारधाराओं के आलोड़न-विलोड़न के बाद किसी सम्यक् विचारधारा तक पहुँचे बिना नहीं हो सकती। पर विचारधारा मात्र साहित्य नहीं है, वह साहित्यिक कृति की शर्तों पर उसमें समन्वित होकर व्यक्त होनी चाहिए। सहज कविता में वैचारिक प्रखरता विचारधारा के बिना नहीं आ सकती। इस विषय की विस्तृत चर्चा मैंने अपने निबन्ध 'विचारधारा और साहित्य' में ('साहित्य के विविध आयाम' पुस्तक में संकलित) की है।

'सहज कविता की आवश्यकता' शीर्षक लेख में मैंने कविता की सम्प्रेषणीयता का प्रश्न भी उठाया था, जिस पर टिप्पणी करते हुए हैदराबाद के प्रो० दिलीपसिंह

ने लिखा—"किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति का सम्प्रेषणीय होना उसकी पहली शर्त है, जो सहज अभिव्यक्ति द्वारा ही सम्भव है। आधुनिक हिन्दी कविता का अबूझ पहेली बनते जाना वास्तव में एक विचारणीय प्रश्न है।" अपने दूसरे लेख 'कविता में सहजता' में मैंने कविता को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए सपाटबयानी की वकालत की है पर सपाटबयानी को कोरा वर्णन अथवा वक्तव्य मानने से इनकार किया है। प्रतीकात्मक, विम्बात्मक शैली के विरोध में सपाट बयानी की चर्चा की गई, पर जिस रूप में हिन्दी आलोचना में 'सपाट बयानी' को सपाट और जड़ बना दिया गया, उसका मैंने विरोध किया है। मेरा विचार है कि सपाट बयानी को सहज कथन अथवा स्वभावोक्ति से जोड़ना चाहिए। यहाँ स्वभावोक्ति को संस्कृत के पुराने काव्यशास्त्री दण्डी द्वारा प्रतिपादित 'स्वभावोक्ति' अलंकार के रूप में ग्रहण नहीं किया गया है।

जो कविता पाठकों की विशाल संख्या तक संप्रषित हो सके उसे सहज कविता माना जा सकता है। चाहे ऐसी कविता छन्दोबद्ध हो, मुक्तछन्द में लिखी गई हो और यदि वह छन्दमुक्त अर्थात छन्दहीन है तो लयात्मक हो। छन्दहीन लयहीन कोरे गद्य को सहज कविता नहीं माना जा सकता, चाहे उसे आधुनिक युग की दरबारी कविता या पुरस्कृत कविता की प्रतिष्ठा से मण्डित किया जाए। इस छन्दहीन, लयहीन तथाकथित गद्यात्मक कविता को सामने रखकर ही उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद, पुरी की मासिक पत्रिका 'कलिंग ज्योति' के सम्पादक नरसिंह नन्द शर्मा ने मुझे लिखे एक पत्र में विचार प्रकट किया—"आधुनिक भारतीय साहित्य की विधाएँ बहुत हो गई हैं।...मुझे लगता है कि मैं फ्रांस की विश्वविख्यात आर्टगैलरी में पहुँच गया हूँ।...आधुनिक कविता वाले अपना विज्ञापन कितना बढ़ा-चढ़ाकर लिखें, परन्तु उनकी कविता पुराण, वेद, संस्कृत नाटकों, काव्यों की तरह चिरंजीवी नहीं बन सकती।"

सहज कविता से जुड़े कुछ प्रश्नों की चर्चा यहाँ इस उद्देश्य से की गई है कि समकालीन हिन्दी कवि और आलोचक इससे सहमत या असहमत होने से पहले हिन्दी कविता की वर्तमान दुर्दशा पर विचार करते हुए इसे स्वस्थ दिशा की ओर ले चलने के लिए प्रवृत्त हों। सहज कविता के बहाने कविता में सहजता लाने का ही मेरा आग्रह रहा है। सहजता की परिभाषा करने का प्रयत्न करते हुए भी मेरा यह दावा नहीं है कि यह अन्तिम शब्द है। सच्चे कवि और सुधी आलोचक इस पर भविष्य में विचार करेंगे और हिन्दी कविता का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

—सुधेश

ग़ज़ल

सपनों की जागीर दे गया।
पर फूटी तक़दीर दे गया।
जो थे बैसाखी के लायक़,
उन हाथों शमशीर दे गया।
नदियों जैसा बहने वाला,
पर्वत जैसी पीर दे गया।
मौन, बिहारी के दोहे सा,
'अर्थ' बहुत गम्भीर दे गया।
दुःशासन के हाथ समय अब
अर्जुन जैसे तीर दे गया।
सब कुछ सहकर चुप रहने का,
नुस्खा एक फ़कीर दे गया।

—गोपाल गर्ग (अजमेर)

संघर्षों के बीच कभी जब याद तुम्हारी आ जाये,
जेठ दुपहरी बीच अचानक जैसे बदली छा जाये।
वन-वन की अनचाही भटकन तभी कहीं थम पाएगी
कस्तूरी अपने भीतर, यह बात समझ में आ जाये।
कौन बूझ पाया है अब तक खोने पाने की माया
कोई पाकर खो जाता है, खोकर कोई पा जाये।
कैसे कह दूं मन-आंगन में केवल तुम्हीं-तुम्हीं हो क्यों
जाने किस क्षण कौन कहाँ पर पागल मन को भा जाये।
मेरा साथ नहीं दे पाये लेकिन यह भी क्या कम है,
जब-जब चाहूँ मन-दर्पण में विम्ब तुम्हारा आ जाए।

—वेदप्रकाश अमिताभ (अलीगढ़)

दर्द की छाँव में,
हम भले गाँव में।

आँसुओं का नमक,
हृदय के घाव में।

पार होंगे पथिक
रेत की नाव में।

मन रुदन पल रहा,
प्यार की छाँव में।

लग रही है यहाँ,
ज़िंदगी दाँव में।

—रामपाल सिंह अरुष (मुज़फ़्फ़रनगर)

खुश्बू से उजागर है—
यह फ़स्ले गुलेतर है।

बेहतर है कि चुप रहिये,
सिरहाने सितमगर है।

जीने का हर इक लमहा,
मरने के बराबर है।

मौसम के मुताबिक़ ही,
माहोल का मंज़र है।

क़ातिल का मेरे कितना
मासूम सा तेवर है।

आज़ाद परिन्दे हैं—
यह झूठ सरासर है।

सीने के शिवालय का,
भगवान भी पत्थर है।

इन्साफ़ की नीलामी,
गीता को भी छूकर है।

पानी से लगा साहिल
सहरा का मुक़द्दर है।

—मधुर नज़मी (मऊ, उ० प्र०)

कह चुके और क्या कहेंगे हम,
सह चुके और क्या सहेंगे हम।
अब तो होकर रहेगी टकराहट,
वे रहेंगे कि या रहेंगे हम।
तुम सागर की ओर बहते हो,
होके पर्वतमुखी बहेंगे हम।
जिसने दामन छुड़ा लिया अपना,
उसकी बाँह क्यों गहेंगे हम।
सारे आलम में रौशनी कर दे,
ऐसी हो आग तो दहेंगे हम।

—राजकुमार सैनी (दिल्ली)

जब आदमी मुझे तनहा दिखाई देता है,
तो कितना लम्बा य' लमहा दिखाई देता है।
खड़ा हूँ ज़खमी जिगर लेके रह गुज़ार पै मैं,
किसलिए संगे राह मसीहा दिखाई देता है।
वफ़ा भी ख़ार की मानिद लगे है मुझे,
ख़लूस गोया इक तमाशा दिखाई देता है।
उठे मुखौटे जो चेहरों से अपने लोगों के,
तो ग़ैर भी मुझे अपना दिखाई देता है।
जलाया किसने है अपने दिल का चराग़
अँधेरे में भी उजाला दिखाई देता है।

—राजेन जैपुरिया (ब्रह्मपुर, उड़ीसा)

हिन्दी ग़ज़ल : सीमाएँ और सम्भावनाएँ

ग़ज़ल अब हिन्दी की लोकप्रिय विधा बन गई है। अपनी विशिष्ट छन्दोमय प्रकृति, उक्ति वैचित्र्य, पूर्ण और स्वतंत्र मुक्तकत्व, कोमल-कान्त पदावली, क्षिप्र और तीखी मारक क्षमता आदि गुणों के कारण वह रचनाकारों और सहृदयों में अपनी पैठ बढ़ाती जा रही है। मूलतः फारसी की यह काव्य विधा उर्दू से पहले हिन्दी में आ गयी थी। तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने पहली हिन्दीग़ज़ल लिखी थी।

इसके उपरान्त कबीर ने कुछ ग़ज़लें लिखीं। हाँ, यह अवश्य है कि यह परम्परा बहुत विकसित होकर चलती नहीं रह सकी। आधुनिक युग में छायावादी कवियों के उपरांत दुष्यन्त ने इस विधा को नये तेवर तथा कथ्य और नयी भंगिमा दी। इसके उपरान्त ही ग़ज़ल हिन्दी में अधिक लोकप्रिय हुई है। दुष्यन्त ने अपने युग की विसंगतियों, राजनीतिक व सामाजिक विद्रूपताओं तथा कटु-कठोर यथार्थ को ग़ज़ल के कोमल कलेवर में बाँधा। यों कहा जाए तो शायद बात ठीक रहेगी कि दुष्यन्त ने दहकते अंगारों को रेशमी रूमाल में बाँध दिया। दुष्यन्तोत्तर काल में ग़ज़ल अपने फारसी और उर्दू के स्वरूप को त्याग कर (प्रेमिका से वार्तालाप जैसे परम्परागत स्वरूप को त्याग कर) आगे बढ़ रही है। हिन्दी रचनाकारों ने ग़ज़ल के कथ्य-क्षेत्र का प्रसार कर दिया है। अब नेता की निर्लज्जता, राजनीतिक दलों की चरित्रहीनता, सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिक वैमनस्य, पर्यावरण असन्तुलन, राष्ट्रीयता, गरीबी, मानवता, विश्व-प्रेम, माँ की ममता, बहिन का अनुराग, इतिहास की विडंबनाएँ, रोते खेत, हाँफती दोपहरी, पत्थर तोड़ता मज़दूर, झगड़ती चौपालें, सूने अगिहाने, गरजती बन्दूकें, उदास रातें, निराश जनतन्त्र, मानवीय पीड़ा आदि सब कुछ ग़ज़ल का कथ्य बनने लगा है। यहाँ तक कि अब हिन्दी ग़ज़ल का प्रभाव उर्दू पर भी पहुँचने लगा है। अब उर्दू में भी 'रवायती' (परम्परागत) ग़ज़लकारों को बहुत अधिक सम्मान की नज़र से नहीं देखा जाता। मंच पर तरन्नुम के साथ पढ़ने वाले ग़ज़लगो भी अब उतना सम्मान नहीं पाते।

ग़ज़ल का हर शेर अपने में स्वतंत्र और पूर्ण होता है जबकि गीत एक पूर्णभाव प्रबन्ध होता है। गीत में एक भाव केन्द्र में होता है। उसी भाव का विस्तार हर अन्तरे में होता है। अतः गीत में भावान्विति रहती है। ग़ज़ल के लिए यह 'कतई' आवश्यक नहीं अपितु एक स्तर पर भावान्विति होना ग़ज़ल के लिए तो ऋणात्मक तत्व हो जाता है। अतः आज के खण्डित व्यक्तित्व वाले मानव के अन्तस की अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल उचित और उपयुक्त माध्यम है। फारसी की परम्परा 'खण्ड-खण्ड' को पूर्ण मानने की है और भारतीय परम्परा अखण्डता और समग्रता की है। इसलिए गीतकार भाव को विस्तार देते-देते समग्रता का अभ्यस्त होता है। अतः वह गीत से चलकर खण्ड-काव्य और महाकाव्य तक पहुँच सकता है, परन्तु ग़ज़लकार कभी महा-काव्यकार नहीं हो सकता। उसकी यात्रा का प्रारम्भ भी ग़ज़ल से होगा और अन्त भी ग़ज़ल पर ही होगा, क्योंकि ग़ज़ल की प्रकृति उसे खण्डों में सोचने का अभ्यस्त बना देती है।

—डॉ० रामस्नेही लाल शर्मा 'यायावर' (फीरोज़ाबाद)

गीत

बैठे नदी किन रे,
झींख रहे हो क्यों मन मारे ?
देखो, ये मछलियाँ नदी में,
तैर रही कैसी मस्ती में,
छिछले जल में भी आपस में—
गलबहियाँ-सी डारे ॥
उठो, बाँसुरी टेरो मन की,
छूमंतर हो सुस्ती तन की;
उठो, उठो, तन्द्रा निज त्यागो,
रहो न हिम्मत हारे ।
कला एक है जग में जीना,
श्रम की पूँजी, व्याज पसीना;
मिट्टी में सोना उपजाओ,
रहो न यों मन मारे ॥
बैठे नदी किनारे ॥

—डोमन साहु 'समीर' (देवघर, बिहार)

बहुत उदास मन
थका-थका बदन
बहुत उदास मन ।
उमस भरा गगन
थमा हुआ पवन
घुटन घुटन घुटन ।
घिरा तिमिर सघन
नहीं कहीं किरन
भटक रहे नयन ।

बहुत निराश मन
बहुत हताश मन
सुलग रहा बदन
जलन जलन जलन।

—महेन्द्र भटनागर (ग्वालियर)

घर तो केवल घर होता है,
ख्वाबों का बिस्तर होता है।

हर कोई हो जाता तनहा,
तनहा कभी न रहता तनहा
सागर अँजुरी भर होता है।

पंछी आकर सब जुटते हैं—
सबके हाथ-पाँव खुलते हैं,
दाना मुट्ठी भर होता है।

घर में भी दफ़्तर होता है,
दफ़्तर में भी घर होता है,
चपरासी अफसर होता है।

माँ के घर ममता होती है,
उसे छोड़ बेटी रोती है,
फिर मिलना दुष्कर होता है।

अपनेपन के छिपे नीड़ में,
एकाकी ही रहे भीड़ में,
ऐसा क्यों अक्सर होता है।

—रेखा व्यास (दिल्ली)

शायद हो इस साल ज़िन्दगी
सहज और सपनीली सी,
इसी आस पर अब तक मैंने
काटी राह कँटीली-सी।

बीते दिन के पड़े फफोले
फूट हृदय में अब भी बहते,
रिक्त अतल के भीतर से नित
अभी भयानक कुहरे घिरते,
पाला मार गया सपनों को
प्यास बनी रेतीली-सी।

कब तक आंख मिचौनी खेलूं
जीवन की इस धूप-छांव में,
आशा और निराशा दोनों
घुलमिल रहती इसी गांव में,
फिर भी मैंने राह बना ली
नयी किन्तु पथरीली-सी।

—सुमनसिंह (दिल्ली)

ग़ज़ल

बीते कितने साल न जाने कितने बाक़ी हैं,
कुछ पूरे अरमान अधूरे कितने बाक़ी हैं।
कभी पिलाते थे, पीने वाले भी पीते थे
सारी मधुशाला पीने वाले अब साक़ी हैं।
मुख गुलाब, आंखें सरसिज, तन से लिपटा रेशम,
उजले कपड़ों के नीचे अब मन तो ख़ाकी हैं।
अधर हँसी, आंखें बादल, दिल में कितने तूफां,
ये कितने अहसान तुम्हारे हम पर बाक़ी हैं।
एक-एक दिन पर्वत-सा भारी था बीत गया
ये भी कट ही जाएंगे जितने दिन बाक़ी हैं।
झटपट मेरे अपराधों की सज़ा सुना डालो
हमें पता तेरे शासन के कुछ दिन बाक़ी हैं।

—सुधेश

हमने जितने ही सपन सुनहरे देखे हैं,
चाहों पर उतने चौकस पहरे देखे हैं।
जिनके मुखड़े पर सजते हैं कई मूखोटे
उतने उनके तन बदन इकहरे देखे हैं।
रातों का पर्दा ढक लेता सब नंगापन
दिन में पर उनके चिकने चेहरे देखे हैं।
रावण के पुतले तो हर साल जला करते
वह मरा नहीं है कई दशहरे देखे हैं।
आदर्शों के पुतले आदर्शों को खाते
उनके हिसाब के खाते दुहरे देखे हैं।

—सुधेश

वज्रघोष

सूरज के घोड़ों की टापों में नाल ठोंक
रोशनी फरोशी का लायसेंस तुम्हारा है
हल, गैंती, क़लम, फावड़ा चला रहे हैं हम
पर उत्पादन पर पहरा कड़ा तुम्हारा है।
पर जीवित होगा न्याय बोध
अन्याय फरेबी चालों से
ज्यादा दिन नहीं जियेगा अब
मानवता का शंखनाद होने को है
अब मेहनतकश में क्रांति उतरने वाली है।

अन्याय-बोध की पीड़ा का परिताप
पसीने को कर देगा वाष्पायित
तब अम्बर में घनघोर घटाओं का स्रष्टा बन जायेगा
कड़केंगी करकायें असंख्य
काँपेगी लाल हवेली उन मक्कारों की
जो कुचल-कुचल कर बेकस के अरमानों को
उनके शोणित को सान बनाते हैं गारा
अपने विलास-भवनों में ऐश मनाते हैं।
आतंक और अन्याय जिन्हें
रखता था अब तक बेज़ुबान
उनकी अस्मिता फड़क कर
सीना तान खड़ी होने को व्याकुल है
जो अब तक चुप थे
अथवा भय से चीखे थे
उनका होगा अब वज्र-घोष

अब सत्य शस्त्र धारण करने को आतुर है
हो रहे सृजित परिप्रेक्ष्य नये इस भूतल पर
मक्कारी बहुत भयातुर है।

—दिनेशचन्द्र द्विवेदी (उरई, उ० प्र०)

नई दुनिया बसाने के लिए

मनमाने दिनों से
मनमानी रात में
सपने आ रहे अच्छे दिनों के।
सब कुछ बिखर जाये
लेकिन बचेगा कुछ
जैसे ठोस धरती
हवा चंचल
सूरज तब भी उगेगा पूर्व में
चाँद चमकेगा
बौर आमों पर लदेंगे
समय पर बादल न छोड़ेंगे बरसना।
ऐसे में बचेंगे आदमी
नई दुनिया बसाने के लिए।

—जितेन्द्र श्रीवास्तव (दिल्ली)

अपरिचय की पीड़ा

आज मानव ने
उगा लीं पास अपने
अपरिचय की कँटीली झाड़ियाँ
अहम की दीवार

बन्द सारे रास्ते
सब द्वार
जिनको पार कर कोई न पहुंचे
व्यक्तित्व की उस भव्यता तक
जो बस वंचना।
अहम-कारा में
मिलेंगे खोखले आदर्श
निर्जीव संज्ञाहीन
सत्य के आकार।

—कमलेशसिंह (ग़ाज़ियाबाद)

मैं हूँ प्यासी धरती का गीत
नहीं गूंजना मुझे
किसी मन्दिर-मस्जिद में,
मुझे न बजना
फूलों वाली गलियों में।
बसना है तो
रेतीली सूनी आंखों में
और झाँकना तो
थके-हारे घर लौट रहे
किसान की आँखों में।
मुझे भटकना है
थूहर के जंगल में
मैं पलाश की आग उगलती गोद पली हूं।
मैं झर जाऊँगी आखिर बौर सरीखी
खेतों की खिली धूप में
या बरसूंगी बदली का टुकड़ा बन
प्यासे खेतों के जलते अधरों पर।

—कुसुमांजलि शर्मा (उरई, उ० प्र०)

सांसों में ओढ़े पीड़ा की
चादर नई नई,
नव विवाहिता क्यों जल बैठी ?
पुलिस न द्वार गई।
कल देखा था मांग रही थी
झोली फैला भीख,

उस बलात्कारी की घटना
आई और गई।
गुप्तचरों ने घूसखोर
बाबू को पकड़ लिया,
अरबों के घोटालों ऊपर
किस की नज़र गई?
एक बार जीता चुनाव बस
बँगले बन जाते,
होरी की क्या मिटी ग़रीबी
सारी उमर गई।

—रामगोपाल परिहार (क्योंझर, उड़ीसा)

गुलिस्तां वीरान हैं
घासें उगीं, मच्छर पले हैं
बेखबर माली हुए
सूखे पात भी लगते भले हैं।
अब तक सुबह आई नहीं
यह मत समझ लेना
चमकते लाल सूरज ने
की है खुदकुशी।
दृढ़ सुकोमल व्यंजना
यदि शूल-सी हो
तो अनूठी हो
चुभन में फूल-सी हो।
कैसा क़हर है
पत्थरों के लोग
अनजाना शहर है।
सारा जंगल एक होकर
क्रोध से जलने लगा
एक तिनके ने कि जब
हवा का रुख़ बदलने को
बग़ावत की।
झुण्ड गिद्धों के
मांस खा सड़ी लाशों का
आकाश पर छाये
जमातें हंस की गुम हो गई हैं।

—श्रीमती मिथिलेश दीक्षित (शिकोहाबाद)

वॉक आउट

तुमने तो समझ लिया
कि मैं मर रहा हूँ—
नहीं, मैं तो असेम्बली से
प्रोटेस्ट में
वॉक-आउट कर रहा हूँ।
कहाँ जाऊँगा ?
कल सवेरे चमचमाता हुआ
वापस लौट आऊँगा।

निरापद नहीं

इस रास्ते हैं पग-पग ख़तरे।
जिस पत्थर को भी उठाओगे
नीचे से उछलते आते पाओगे—
नाग—काले, भूरे, चितकबरे।

—रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण' (सोनीपत-हरियाणा)

कुछ हाइकु

वर्षों बाद
नैन और आँसू का
हुआ मिलन।

मैं उड़ूँगा
मेरे पंख खोलो तो
देखना गति।

तोड़ने वाले
एकता की घोषणा
करने लगे।

पल बदला
धीरे धीरे जीवन
बदल गया।

वही फैसला
ग़लत लोग लेंगे
पंचायत में।

—मुकेश रावल (आनन्द, गुजरात)

आधुनिक मलयालम कविता

—प्रो० एस० गुप्तन नायर

काल परिवर्तनशील है। काल-धर्म भी परिवर्तनशील है। इन सबके अनुरूप कविता के कथ्य में और शैली में भी परिवर्तन होता है।

यद्यपि मेरी पीढ़ी के पाठक चंगम्पुषा जैसे, 'मलयालम के कवियों की इति-वृत्तात्मक एवं छन्दोबद्ध कविताओं का ही आस्वादन करते आये हैं तो भी हम लोग आधुनिक कविताओं का भी आस्वादन कर पाते हैं। समस्या तब उठती है जब व्याकरण, छन्द, रस आदि से अनभिज्ञ व्यक्ति भी केवल अपने मोहभंग, कुंठा, निराशा, अस्तित्व-दुःख आदि के आधार पर आधुनिक कविता कर डालते हैं।

टी० एस० इलियट की कविता वेस्टलैंड जब निकली (1922) तब मलयालम के प्रमुख कवि कुमारन आशान, वल्लत्तोल आदि चंडाल-भिक्षुकी जैसी इति-वृत्तात्मक छंदोबद्ध कविता की रचना में लगे हुए थे। क़रीब तीस-चालीस वर्ष बाद हमारे कुछ कवियों ने केवल रूपगत विलक्षणताओं के द्वारा कविता में आधुनिकता लाने का विफल प्रयास किया। छंदहीन शब्द विन्यास, विश्लथ बिंब-विधान, और शैलीगत विलक्षणताएं—यही सब उन की दृष्टि में आधुनिकता के अंग थे।

लेकिन कुछ श्रेष्ठ कवियों ने आधुनिकता की चेतना को आत्मसात किया। वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनोन, जी० शंकर कुरूप और एन०वी० कृष्ण वारियर इनमें प्रमुख थे। उन्होंने वैज्ञानिक मानवीयता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया। जी० शंकर कुरुप की कविता 'निमिष' 1945 में, एन० वी० की लंबी कविताएं 1948 में और वैलोप्पिल्ली की 'कुटि ओषिप्पिक्कल' नामक कविता 1952 में प्रकाशित हुई। ये ही मलयालम के प्रारंभिक आधुनिक कवि हैं। इनकी भाषा की अस्पष्टता पर आपत्ति की गयी। संगीत-शून्यता की आलोचना हुई। पर उनके नये कथ्य के लिए नई शैली अपेक्षित थी।

श्री अक्कित्तम की कविता 'बीसवीं सदी का इतिहास' (1958) सचमुच नयी थी। समय की चेतना से यह कविता ओत:प्रोत थी। समकालीन सामाजिक

जीवन की विसंगतियों पर कवि बड़ी तटस्थतापूर्वक प्रकाश डालते हैं। चित्त सन्निपात की मूर्च्छा से ग्रस्त होकर अंधकार में भटक रहे युवकों की क्षुद्र कामनाएँ, विद्वेष का दिव्य-मंत्र रटने वालों का आवेश-ज्वर आदि विषय पाठकों के मन को आलोड़ित कर देते हैं। रूप की दृष्टि से ललित और भाव की दृष्टि से गहन यह कविता मलयालम कविता के इतिहास में एक नयी रचना है।

इस दिशा की अगली कड़ी बनकर आयी डा० अय्यप्प पणिक्कर की कविता 'कुरुक्षेत्र'। इसे आधुनिक कविता का ध्रुव नक्षत्र माना गया। मनुष्य के मन में देवासुर युद्ध अनादि काल से चलता आ रहा है। आधुनिक मनुष्य के सामने भी यही सवाल है। धर्म क्या है? अधर्म क्या है? वह निर्णय नहीं कर पाता। उत्तर देने के लिए श्रीकृष्ण आज नहीं हैं। कवि स्वयं विश्व संस्कृति के विराट स्वरूप का अनावरण कर देता है। कविता आकर्षक है और विभ्रामक भी। इसमें विचार-तत्व प्रमुख है। यह पाठकों के हृदय की गहराई को छू नहीं पाती। लेकिन सारी अस्पष्टता को भेदती हुई इसकी काव्य-शक्ति कहीं प्रकट हो जाती है—

धर्म क्या है ?···
आसमान के नीचे के
मंदिरों मस्जिदों गिरजाघरों के
पैने गुंबदों के भाले
मनुष्य के हृदय को
विदीर्ण कर रहे हैं।
उसके नेत्रों को चीरकर
वेद की ऐनक का आवरण
बाँध दिया जाता है।···
विश्वास का पानी उबल रहा है।

फिर ऑपरेशन थियेटर का सादृश्य उभर आता है। नर्सों के साथ डाक्टर कुछ प्रवेश करता है। वे पापों को धो डालते हैं। पुरोहितों ने धर्म के नाम पर जो कठिन पाप किये उनके प्रायश्चित्त के रूप में नये अस्पताल खोले जा रहे हैं। यही शायद इसकी ध्वनि है। इस प्रकार के अनेक चित्रों की एक प्रदर्शनी है 'कुरुक्षेत्र' कविता। विश्व के इतिहास की अनेक निर्णायक घटनाएं और उनको नयी दिशा देते हुए महापुरुष कवि के बोध-तल से गुजरते हैं। श्रीराम का धर्म-संकट। पितृ-हन्ता ईडिप्पस की धर्म-विभ्रान्ति। नवाखाली में भटक रहे महात्मागांधी का घनीभूत विषाद। सब का तांता लग जाता है। दार्शनिक अशान्ति ने इस कविता को जन्म दिया है। उत्कट दुःख से निकलकर वह उदात्त दुःख से होती हुई वर्तमान की व्यर्थता की ओर बढ़ती है। व्यास और वसिष्ठ, कृष्ण और करीम, गौतम

और गांधी मनुष्य के अंतर्द्वन्द्वों को सुलझा नहीं सके। अब क्या करें? मन के वातायन खुले रखें। अपने-अपने स्वप्नों के अनुसार जिएँ, यही कवि का सन्देश है। यह कविता सन 1951 से 1957 तक के अंतराल में लिखी गयी।

आधुनिक मलयालम कविता में जो दुस्सह विडंबनाएँ पनप रही हैं उनमें प्रमुख हैं—

1. रूप-भ्रम

रूपों में नवीनता आवश्यक है। पर केवल रूपों में ही नये-नये प्रयोग होते रहें तो उसे यथार्थ कला कैसे कहें? वह तो बालकों का कुतूहल ही कहलाएगा।

2. विलोमत्व (Perversity)

आधुनिक कवि सब का निषेध करते हैं। कोई उनसे कहे 'तब माता पतिव्रता' तो यह कहेंगी-'नहीं नहीं।' यौन विलयों के प्रति वे अमित रुचि दर्शाते हैं। वे साहित्य को आदिम मनोवृत्तियों तक ले जाते हैं।

3. विकृतीकरण (Distortion)

आधुनिक चित्रकला की आराधना करने वाले आधुनिक कवि विकृतीकरण के भी आराधक हैं। उनका विचार है कि चूंकि जीवन अव्यवस्थित है इसलिए कविता भी अव्यवस्थित हो।

4. दुर्बोधता

(क) कविता में गहनता का अभाव है। इसलिए कविता दुर्बोध हो जाती है।

(ख) इधर-उधर से लिये गये अपाच्य तत्व खंडों को मिलाकर प्रस्तुत करने से कविता अग्राह्य हो जाती है। सच्चिदानन्दन की कविता 'सूर्य ध्यान' इसका उदाहरण है।

इन सबके होते हुए भी हम आधुनिक मलयालम कविता में कविता की सहज विकास-प्रक्रिया ही पाते हैं। उसकी नयी शैलियाँ, कल्पनाएँ, ताल-लय, नया कथ्य आदि उसकी विशेष उपलब्धियाँ हैं। कविता को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए आधुनिक कवि कभी पुरावृत्तों का सहारा लेते हैं (जैसे चेरियान के० चेरियान की कविता 'भस्मासुर', सुगत कुमारी की कविता 'कालिय मर्दन', विष्णु नारायण की कविता उर्वशीनृत्य, पालूर की कविता 'व्यर्थ पर्व', के० वी० रामकृष्णन की कविता 'अतिरात्र' आदि में)। इस प्रवृत्ति को 'मार्गी' कह सकते हैं। कभी ये कवि ग्रामीण शैलियों को पुनर्जीवित करते हैं (जैसे कटम्मनिट्टा रामकृष्णन की कविताओं में तथाकथित सभ्यता पर व्यंग्यबाण)। इस प्रवृत्ति को 'देशी' कह सकते हैं। कभी ये कवि विदेशी कविताओं का अनुकरण करते हैं। इस प्रवृत्ति को 'विदेशी' कह सकते हैं।

प्रयत्नजन्य घृणा-व्यापार, लयहीनता और विरस गद्यात्मकता, फैशन-परस्ती

से प्रेरित हास्यस्पद प्रयोगों से यदि आधुनिक मलयालम कविता मुक्त हो सके तो वह साहित्य की राजवीथि पर पहुंचेगी ही।

मलयालम से अनुवाद—
के० जी० बालकृष्ण पिल्लै (तिरुअनन्त पुरम)

मूल्यांकन

'यह लो मेरे हस्ताक्षर'[1] हिन्दी के वरिष्ठ कवि डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण' का आठवाँ काव्य संग्रह है। इसमें 98 कविताएँ हैं, जिनमें जीवन और जगत के विविध विषयों, स्थितियों, समस्याओं आदि की मार्मिक व्यंजना है। नीम मिसरी, छिपकली, बंसरी, सराय, मनमाफिक मकान, जलते तवे की बूंदें, साबुन से धुलाई, गुड्हल का पेड़, टेबिल क्लाथ, किचन की खुशबू, गुमचोट, बचपन बुढ़ापा, राज मज़दूर, धुनिया, पोटली जैसे विषयों पर लिखित कविताएँ जहाँ जीवन-जगत के अनेक रूपों से कवि की गहरी पहचान का संकेत देती हैं, वहाँ वे यह भी बताती हैं कि कवि हर कहीं कविता का विषय पा जाता है और वह किसी भी अनुभव को कविता में ढाल देता है।

तरुण जी की कविता के मुख्य विषय प्रकृति, सामाजिक-राजनीतिक विकृतियाँ, व्यापक जनजीवन, मजदूर, बुद्धिजीवी, गृहस्थ-जीवन के छोटे-छोटे अनुभव, आम आदमी की नियति आदि रहे हैं। व्यापक रूप से वे प्रेम एवं सौन्दर्य के कवि हैं, पर उन्हें रोमांटिक कवि नहीं कहा जा सकता। वे यथार्थवादी कवि हैं, पर यथार्थवाद ने उनकी दृष्टि को मतवादी और उनके काव्य शिल्प को खुरदुरा तथा रूक्ष नहीं बनाया है। अनगढ़ से अनगढ़ विषय को उन्होंने पूरे भाषागत सौष्ठव, काव्यात्मक शिल्प एवं भावात्मक तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है। विविध प्रदूषणों के दौर में स्वर प्रदूषण पर उनकी बेबाक टिप्पणी 'आवाज' शीर्षक कविता में यों है—

---

1. यह लो मेरे हस्ताक्षर—कवि रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण'—अमितकान्ति प्रकाशन, 149 आर—मॉडल टाउन, सोनीपत (हरियाणा) पृष्ठ 95, प्रथम संस्करण 1995, मूल्य 125/-

(पृष्ठ 2 का शेष)

करना है। जहाँ तक हिन्दी ग़ज़ल में···संस्कृत तत्समता लाने की बात है तो यह तो लेखक के भाषा-बोध व उसकी क्षमता पर आधारित है। एक हिन्दी गीतकार ···जब हिन्दी में ग़ज़ल लिखने बैठेगा तो अपने आसपास के जीवन के विम्ब-प्रतीक चुनेगा।···आपका सम्पादकीय (अंक-7) ग़ज़ल के शिल्प पर अच्छा आलेख है।

—डॉ० रामशंकर द्विवेदी (उरई, उ०प्र०)

'हिन्दी ग़ज़ल' की अवधारणा दुष्यन्त के ग़ज़लियात की प्रसिद्धि···से चली। इसमें उर्दू के रंग और ढंग के साथ-साथ हिन्दीपन की अधिकता से इसे 'हिन्दी ग़ज़ल' कहा गया, जो गलत नहीं है। दुष्यन्त अगर उर्दू का अन्दाज़ेबयाँ और एक हद तक उसकी बुनावट छोड़ देते तो वह शुद्ध हिन्दी ग़ज़ल हो सकती थी पर तब शायद उन्हें इतनी मशहूरियत नहीं मिलती।···'हिन्दी ग़ज़ल' को सामासिक संस्कृति···का समकालीन संगम मान लेना चाहिए।···'सहज कविता' मात्र अभिधा या एकार्थपरक नहीं होती, उसमें गहरी, अगम्य गूँजें या ध्वनि या व्यंग्य हो सकता है। अत: 'सहज' का अर्थ बुनावट की जटिलता से मुक्ति और बौद्धिक क्लिष्ट शब्दाडम्बर से बचाव हो सकता है, परन्तु यदि सहज कविता में सम्पूर्ण सन्दर्भ को लाने वाले या झंकार भरने वाले शब्द हों, संरचना हो तो वह सहज कविता साधारण कविता से श्रेष्ठ होगी। अत: सहज कविता तो हो पर वह साधारण या वैशिष्ट्य रहित न हो, तब है।···यह साधारण कविता को सहज कविता मानने वालों को 'असहज' लग सकती है।--डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय(जयपुर)

('सहज कविता' का सातवाँ अंक प कर कुछ मित्रों ने ग़ज़ल पर रोचक टिप्पणियाँ भेजी हैं। कुछ इस अंक में छपी हैं। डॉ० रामशंकर द्विवेदी हिन्दी ग़ज़ल में संस्कृत तत्समता, हिन्दी शब्दों, प्रतीकों, विम्बों के प्रयोग का समर्थन करते हैं और 'हिन्दी ग़ज़ल' शब्दावली का भी। डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय 'उर्दू के रंग और ढंग' को 'सामासिक संस्कृति' के तर्क के आधार पर उपयोगी समझते हैं। दुष्यन्त की ग़ज़लों की प्रसिद्धि का कारण उन्होंने उनका उर्दू रंग-ढंग माना है, जबकि वास्तविकता यह है कि समकालीन यथार्थ की बेबाक व्यंजना के कारण ही उनकी ग़ज़लें हिन्दी वालों में लोकप्रिय हुईं। उर्दूवालों ने अक्सर उनकी ग़ज़लों को उर्दू ग़ज़लों के समकक्ष नहीं माना, बल्कि स्तरहीन ग़ज़लें कहा। 'उर्दू का रंग-ढंग' अपनाने पर उन्हें हिन्दी वालों ने सराहा। फिर आजकल ऐसे अनेक हिन्दी कवि दिखाई देते हैं, जो हिन्दी में उर्दू ग़ज़ल लिख रहे हैं, लेकिन उर्दू के रंग और ढंग को अपनाने के बावजूद दुष्यन्त जैसी प्रसिद्धि तो दूर की बात है, आलोचकों की कटु आलोचना के शिकार हो रहे हैं। कविता में उधार का रंग और ढंग थोड़े समय काम दे सकता है, विशिष्ट शैली की कलाबाज़ी विशिष्ट लोगों को चमत्कृत कर सकती है, पर अन्तत: कविता के कथ्य, उसके सन्देश, उसकी 'बात' का ही महत्व होता है। शमशेर ने खूब कहा था 'बात बोलेगी, हम नहीं।'—सम्पादक)

SAHAJ KAVITA A Hindi Quarterly/R. No. 593S1/94

'सहज कविता' के पिछले अंक प्राप्य

अंक—1 के आकर्षण

सम्पादकीय 'सहज कविता की आवश्यकता' तथा अनेक कवियों की ग़ज़लें, कविताएँ, दोहे और गीत।

अंक—2 के आकर्षण

सम्पादकीय 'कविता में सहजता', राजीव सक्सेना का लेख 'सहज कविता महज कविता', अनेक कवियों की ग़ज़लें, गीत आदि।

अंक—3 के आकर्षण

सम्पादकीय 'सहज कविता और छन्द', तारिणीचरणदास 'चिदानन्द' तथा दिविक रमेश की महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ, अनेक कवियों की रचनाएँ।

अंक—4 के आकर्षण

सम्पादकीय 'सहज कविता और लय', अमृत राय के सहजता सम्बन्धी विचार, अनेक कवियों की कविताएँ, ग़ज़लें।

अंक—5 के आकर्षण

सम्पादकीय 'सहज कविता और भाषा', भगतसिंह का लेख 'सहज कविता की परपरा', अनेक कवियों की ग़ज़लें, कविताएँ, दोहे।

अंक—6 के आकर्षण

सम्पादकीय 'सहज कविता और कला', सुरेशचन्द्र शर्मा का लेख, समीक्षाएँ तथा अनेक काव्य-रचनाएँ।

अंक—7 के आकर्षण

सम्पादकीय 'सहज कविता और ग़ज़ल', चिरंजीत, ज्ञानप्रकाश विवेक, महेश दिवाकर, रमानाथ त्रिपाठी के लेख तथा अनेक काव्य रचनाएँ।

प्रत्येक अंक सात रुपये/मनीआर्डर द्वारा सम्पादक के नाम भेजकर अथवा सातों अंक पचास रुपये भेजकर उपलब्ध। इसमें डाकखर्च शामिल है। नमूने की प्रति मूल्य-प्राप्ति के बाद भेजी जाएगी।

—व्यवस्थापक

प्रकाशक श्रीमती सुशीला शर्मा, 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित। तरुण प्रिंटर्स, 9267 पश्चिमी रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

अवैतनिक सम्पादक—डॉ० सुधेश